Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 GISRRJ | Volume 3 | Issue 2 | ISSN : 2582-0095

शैव दर्शन को अभिनवगुप्त का अवदान

डॉ0 शालिनी साहनी
संस्कृत विभाग, आर0एम0पी0पी0जी0 कालेज, सीतापुर, उत्तर प्रदेश।

शोध सारांश– भारत वर्ष का सांस्कृतिक बौद्धिक इतिहास बिना कश्मीर के पूरा नही हो सकता। कश्मीर सभी कालखण्डों में सभी प्रदेशों से जुडा रहा । कश्मीर शैव, शाक्त, वैष्णव समस्त दर्शनों का केन्द्र रहा है। वेदान्त मीमाँसा न्याय आदि का भी केन्द्र रहा है। कश्मीरी आचार्यों के अवदान के बिना भारतीय ज्ञान परम्परा का अध्ययन अपूर्ण और भ्रामक सिद्ध होगा। ऐसे ही एक क्रान्तदर्शी , कवि दार्शनिक, काव्यशास्त्री, चिन्तक, साधक एवं सम्यता मूलक विमर्श को समाज के समक्ष रखने वाले सर्वज्ञ, विलक्षण प्रतिभा चक्षुओं से युक्त आचार्य के अवदान पर दृष्टि डालना अपेक्षित हैं। वह आचार्य अभिनवगुप्त पाद है। एक दार्शनिक के रूप में उनकी मान्यतायें अदभुत है। वे युक्ति के स्थान पर अनुभव पर बल देते है वे श्रुति को अनुभूति के ऊपर नही रखते । अद्वैत वाद में युक्ति के आधार पर संशोधन करते है। वे माया मिथ्या के संसार का खण्डन करते है। उनका कथन है कि यदि चेतना सत् है तो यह नाम रूपात्मक संसार मिथ्या नहीं हो सकता हैं। उन्होंने संसार के नकार की परम्परा को स्वीकार की परम्परा के रूप में रखा हमारे समक्ष । अभिनवगुप्त के दार्शनिक विश्व की यात्रा करने के लिए कश्मीर में शैव दर्शन की बहुत लम्बी पराम्परा से साक्षात्कार करना होगा। अभिनवगुप्त से पहले के काल में जाने पर ही उनके चिन्तन जगत के आधार बिन्दुओं को समझा जा सकता है। यह कश्मीर में भाषा कला और दर्शन को सूर्योदय काल था। अभिनवगुप्त ने शैव दर्शन के हर आयाम पर लिखा। तंत्रालोक, परात्रिषिंका विवरण, परमार्थ सार, तंत्रसार और गीतार्थ सग्रंह उनके प्रचलित ग्रन्थ है। परमार्थ सार शेष की कारिका पर आधारित है, तो गीतार्थ संग्रह भगवतगीता पर उनकी टिप्पणी है। उनका कथन है कि सभी प्रकार के दुःखों से मुक्ति केवल परम्शिव को साक्षात देखने से ही सम्भव है उन्हें आपत्ति नही कि शिव को कोई कृष्ण के रूप में सम्बोधित करे। कौरव पाण्डव युद्ध को उन्होंने विद्या और अविद्या के बीच संघर्ष बताया है। प्रत्यभिज्ञा विमर्श उनके प्रिय विषय प्रत्यभिज्ञा को समझाने वाला महत्वपूर्ण ग्रंथ है। वहॉ वे कहते है कि अज्ञान के कारण जिसे भूल गए है उस परमशिव के साथ पुनः साक्षात्कार कैसे हो । अभिनवगुप्त ऐसे प्रतिभावान दार्शनिक और चिंतक थे । जिन्होंने अनेक दार्शनिक मान्यताओं और साधना पद्धतियों का समन्वय करते हुये एक समग्र दर्शन प्रस्तुत किया, ऐसा दर्शन जिसे समाज को हजारों वर्ष से चली आ रही अतिरंजनाओं से मुक्त होने का मार्ग प्रशस्त किया।

मुख्य शब्द –शैव, कश्मीर, अभिनगुप्त, दर्शन, परमार्थ, शैव, शाक्त, वैष्णव।

कश्मीर की ख्याति शारदा मण्डल के रूप में है। कश्मीर को सर्वज्ञपीठ कहा जाता है। भारत वर्ष का सांस्कृतिक बौद्धिक इतिहास बिना कश्मीर के पूरा नही हो सकता। कश्मीर सभी कालखण्डों में सभी प्रदेशों से जुडा रहा। कश्मीर शैव, शाक्त, वैष्णव समस्त दर्शनों का केन्द्र रहा है। वेदान्त मीमाँसा न्याय आदि का भी केन्द्र रहा है। कश्मीरी आचार्यों के अवदान के बिना भारतीय ज्ञान परम्परा का अध्ययन अपूर्ण और भ्रामक सिद्ध होगा। ऐसे ही एक क्रान्तदर्शी, कवि दार्शनिक, काव्यशास्त्री, चिन्तक, साधक एवं सम्यता मूलक विमर्श को समाज के समक्ष रखने वाले सर्वज्ञ, विलक्षण प्रतिभा चक्षुओं से युक्त आचार्य के अवदान पर दृष्टि डालना अपेक्षित हैं। वह आचार्य अभिनवगुप्त पाद है। वह महान तत्ववेत्ता बहु आयामी आचार्य, ज्ञान–साधक है।

तन्त्रालोक के आरम्भ में वे कहते है – कि ज्ञान वह है जो मोक्षदायी हो। यहॉ अज्ञान हम ज्ञान के अभाव को नही कहते अपितु सीमित ज्ञान को कहते है।

"मोक्षो हि नाम नैवान्यः स्वरूप प्रथनमात्र" अभि0 तन्त्रालोक[1]

मोक्ष और कुछ नहीं है अपितु अपने स्वयं के स्वरूप का विस्तार मात्र है।

आचार्य अभिनवगुप्त पर यह श्लोक सटीक प्रतीत होता है–

काव्येषु कोमल धियों वैमेव न अन्ये । तर्केषु कर्कश धियोवैमेव न अन्ये।

तन्त्रेषु यन्त्रितधियोवैमेव न अन्ये ।श्कृष्णेषु संयतधियो वैमेव न अन्ये।

आचार्य प्रवर अभिनवगुप्त एक सौन्दर्यशास्त्री, काव्यमर्मज्ञ, नाट्यशास्त्री के रूप में अद्भुत चिन्तन करते है। रस सिद्धान्त, साधारणीकरण, अभिव्यक्तिवाद पर बात हो तो नाट्क के कालखण्ड में श्रोता–पाठक को लेकर चले जाते हैं। वह साधारणीकरण की उस सीमा तक ले जाते है। जहॉ काव्यशास्त्री दार्शनिक हो जाता है। एक दार्शनिक के रूप में उनकी मान्यतायें अदभुत है। वे युक्ति के स्थान पर अनुभव पर बल देते है वे श्रुति को अनुभूति के ऊपर नही रखते। अद्वैत वाद में युक्ति के आधार पर संशोधन करते है। वे माया मिथ्या के संसार का खण्डन करते है। उनका कथन है कि यदि चेतना सत् है तो यह नाम रूपात्मक संसार मिथ्या नहीं हो सकता हैं। उन्होंने संसार के नकार की परम्परा को स्वीकार की परम्परा के रूप में रखा हमारे समक्ष ।महान तान्त्रिक के रूप में आचार्य अभिनवगुप्त ने शैव शाक्त तन्त्रसाधना का हमारे व्यावहारिक जीवन में क्या प्रयोग है उसकी स्थापना की है। मेधा को धारित करने वाले कृष्ण की भांति जब अंधेरा हो जीवन में तब आगे देखने वाले की भांति अभिनवगुप्त संयत–स्थिर बुद्धि वाले योगी कहे जाते है। ऐसे विचारक चिन्तक दार्शनिक की पिछले चार वर्षों से सहस्राब्दि मनायी जा रही है। उस कालखण्ड में जब भारत आक्रान्ताओं के बर्बर वार झेल रहा था। भारतवर्ष में अंधेरा छा गया था उस समय उन्होंने सांस्कृतिक चेतना को जन्म दिया।

आचार्य का विचार एवं विषय प्रवेश बहुत ही विस्तृत है–विलक्षण है। हमारे इतिहास में जितनी विविधता हो सकती है उतनी विविधता एक व्यक्ति में है। ज्ञान–विद्या का कोई क्षेत्र उन्होंने छोडा नही है। समस्त विधायें आचार्य की हस्तामलक है। उनके विद्या के विभिन्न क्षेत्रों के लिए उनके हाथों में कई आमलक है। उन्होंने अपनी विद्वता से समस्त विद्वत समाज को परिवर्तित किया। वे सबको अपना ज्ञान सुलभ करना चाहते थें। उनकी साधना को आगे चलकर "वाममार्गी साधना" कहा गया।**"अभिनवभारती"** में आचार्य अपने लक्षण चक्षुओं से संगीत नृत्य को दर्शन से जोड़ देते हैं। उस गूढ़ विचारधारा को सिद्धान्त से जोड़ देते है। वे शोध करके नवीन सिद्धान्तों को गढ़ते है। उन्होंने अपने समय की दीवारो को तोड़ा और विद्या को लोक के लिये खोल दिया। ऐसे आचार्य अभिनवगुप्त आचार्य की विलक्षण प्रतिभा का गुणगान अपेक्षित है। अभिनवगुप्त कश्मीर में शैव दर्शन को एक नये रूप में स्थापित करने वाले प्रमुख दार्शनिक बनें। अभिनवगुप्त का कथन है कि –

मधुमक्खी की भांति बनो जो बहुत से फूलों से पराग बटोरकर उसे अपने ही प्रयास से मधु बनाती है।

अभिनवगुप्त के दार्शनिक विश्व की यात्रा करने के लिए कश्मीर में शैव दर्शन की बहुत लम्बी परामपरा से साक्षात्कार करना होगा। अभिनवगुप्त से पहले के काल में जाने पर ही उनके चिन्तन जगत के आधार बिन्दुओं को समझा जा सकता है। यह कश्मीर में भाषा कला और दर्शन को सूर्योदय काल था। आठवीं शताब्दी में वसुगुप्त को शैव दर्शन के पहले गम्भीर व्याख्याता मान ले तो अभिनवगुप्त उस काल खण्ड के सबसे ऊॅचे शिखर पर विराजमान मान जायेगें। वसुगुप्त और अभिनवगुप्त के बीच का डेढ सौ वर्ष का कालखण्ड शैव दर्शन के विभिन्न आयामों के विकास और अनेक दार्शनिक बिन्दुओं की परिभाषा का युग था।

शैव दर्शन को तीन दृष्टि कोणों से देखा जाता रहा है। भेद अभेद और भेदा भेद। अभिनवगुप्त के लिए शिव चराचर ब्रह्माण्ड में ही व्याप्त है। उस माया में भी वहीं व्याप्त है। जिसे अवरोध माना जाता है। उन्हें इस दिशा में चार पम्परायें दिखायी दी। लेकिन मनन करने पर उन्हें लगा कि ये चार अलग दर्शन नही एक विराट दर्शन के ही चार अनिवार्य आयाम है ये चार धारणाएँ है – **क्रम परम्परा, स्पंद परम्परा, कुल परम्परा और प्रत्यभिज्ञा परम्परा ।**

अभिनवगुप्त की रचना संसार अत्यन्त विपुल है। अभिनवगुप्त ने शैव दर्शन के हर आयाम पर लिखा। **तंत्रालोक, परात्रिषिंका विवरण, परमार्थ सार, तंत्रसार और गीतार्थ सग्रंह** उनके प्रचलित ग्रन्थ है। परमार्थ सार शेष की कारिका पर आधारित है, तो गीतार्थ संग्रह भगवतगीता पर उनकी टिप्पणी है। भरत मुनि के नाट्यशास्त्र पर अभिनव भारती और आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक पर विवेचना लिखकर आनन्दवर्धन के इस ग्रन्थ पर अपना मत व्यक्त करते हुये ध्वनि को अभिनवगुप्त चौथा आयाम बताते है। उनका कथन है कि सभी प्रकार के दुःखों से मुक्ति केवल परम्शिव को साक्षात देखने से ही सम्भव है उन्हें आपत्ति नही कि शिव को कोई कृष्ण के रूप में सम्बोधित करे।

कौरव पाण्डव युद्ध को उन्होंने विद्या और अविद्या के बीच संघर्ष बताया है। प्रत्यभिज्ञा विमर्श उनके प्रिय विषय प्रत्यभिज्ञा को समझाने वाला महत्वपूर्ण ग्रंथ है। वहॉ वे कहते है कि अज्ञान के कारण जिसे भूल गए है उस परमशिव के साथ पुनः साक्षात्कार कैसे हो। उन्होंने लगभग 42 पुस्तकें लिखी थी किन्तु आज कई पुस्तकें उपलब्ध नही है वहीं कुछ अधूरी पाण्डुलिपियॉ भी मिली है तंत्र और शैवदर्शन के बारे में उनके प्रमुख ग्रन्थों में **तंत्रालोक और लाघवी और बृहत विमर्शिनी** सबसे से महत्वपूर्ण है तंत्रलोक तंत्र और शैव साधना पर विश्वकोषीय आकार का विशाल ग्रन्थ है। इसी विषय को कम शब्दों और सरल भाषा में समझने के लिये उन्होंने एक छोटा ग्रन्थ लिखा। जिसका नाम रखा गया तंत्रसार। इसी वर्ग में परमार्थ सार भी शामिल है। संक्षिप्त और वृहत विमर्शनियॉ अपने गुरू उप्पलाचार्य की प्रसिद्ध पुस्तक ईश्वर प्रत्यभिज्ञा कारिका पर भाष्य है।

इसके अतिरिक्त कुल परम्परा पर लिखी **मालिनी विजया वार्तिका और परात्रिंशिका विवर्ण** उनकी महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। उनका **भैरव स्तोत्र** सबसे प्रसिद्ध स्तोत्र है। उनकी तीन महत्वपूर्ण रचनायें प्रत्यक्ष रूप से शैव दर्शन के बारे में नही है। **भगवतगीता संग्रह**–इसमें अभिनवगुप्त ने गीता को विद्या और अविद्या के बीच सघंर्ष के रूप से देखा है और निष्कर्ष यह है कि परम चैतन्य के साक्षात्कार पर ही मोह से मुक्ति मिल सकती है। अन्य दो रचनायें सौन्दर्य शास्त्र और नाट्यशास्त्र के बारं में है।

आचार्य अभिनवगुप्त – काव्य एवं सौन्दर्य मीमांसा

आचार्य अभिनवगुप्त पाद की प्रतिभा बहुमुखी है। इस प्रतिभा को उन्होंने गुरू चरणों में बैठकर व्युत्पत्ति और अभ्यास से और भी प्रखर बना दिया उनकी इसी नैसर्गिक प्रतिभा महान ग्रन्थों का अध्ययन मनन एवं शिवभक्ति उनको प्रमाण भूत आचार्य के रूप में विख्यात करती है। आचार्य ने विविध फलों से पराग संचित किया और उसे अपनी साधना एवं प्रतिभा के संयोग से मधु में परिणत कर दिया उनका रति भक्ति से युक्त एक सुन्दर पद्य है जिससे उनके दार्शनिक का रस सिद्ध होना निश्चित होता है और उनके काव्य सौन्दर्य मी मीमांसक का दर्शन निष्णात होना।

अभिनवगुप्त को साहित्य के रस भोग में लिप्त देख शिव भक्ति रूपी नायिका उन्मत्त हो उठी और उसने स्वयं ही जाकर उन्हें पकड़ लिया। इसके बाद उन्होंने स्वयं भी सब कुछ भुलाकर तन्मय होकर लोकाचार आदि को भूल शिव–भक्ति रूपी नायिका के वशीभूत हो गुरू–जनों के घर सेवक का कार्य स्वीकार कर लिया। (तन्त्रालोक – 37.58–59)[2]

वस्तुतः अभिनव का वैशिष्ट्य श्रृंगार काव्य और भक्ति के द्वैत में नहीं इसके सामंजस्य में हैं। स्वयं आगम शास्त्र की जिन परम्पराओं को समाहित कर उनका उदार व्यक्तित्व निर्मित हुआ उसमे साहित्य और संगीत के लिये पर्याप्त समर्थन है। विज्ञान भैरव जैसे प्रतिष्ठित आगम ग्रन्थ की दो धारणाएँ व्यक्त करते हए वे लिखते है –

"जब योगी का मन गीत आदि के आनन्द के साथ तदाकार हो जाता है तब वह अपने मानस के विस्तार के कारण उस परमतत्व के साथ एकाकार हो जाता है। (73)

"जहाँ जहाँ मन सन्तुष्टि प्राप्त करता है मन को (योगी) वहीं धारण करे क्योंकि वहीं से परमतत्व की आनन्द शक्ति व्यक्त हो जाती है । (74)

ऐसा इसलिए होता है क्योंकि उस सर्वव्यापक परमतत्व से अछूता कोई भी देश और काल नही है। कला और सौन्दर्य कश्मीर शैवदर्शन की आधार भूत विशेषताओं में से है। कश्मीर शैवदर्शन एक सौन्दर्य मीमांसीय दर्शन है। **शिव स्वयं ही नटराज कहे जाते है और सृष्टि, स्थिति संहार, तिरोधान तथा अनुग्रह उनके पॉच कृत्य है। यही उनकी लीला नृत्य और लीला रहस्य है। जगत भी एक नाट्य है। यह वाह्य रूप से भी घटित होता है और आन्तरिंक रूप से भी। शिव सूत्रग्रंथ का प्रथम सूत्र है–चैतन्यात्मा अर्थात् आत्मा चैतन्य है और यहीं आत्मा अज्ञान के आवरण के कारण अपने स्वरूप की विस्मृति अथवा गोपन से विविध भूमिकाओं का जैसे कि एक अभिनेता नाट्य मण्डप में निर्वाह करता है।**

तीन शिव सूत्रों में यह रूपक पूरा हो जाता है

नर्तक आत्मा। रंगों अंतरात्मा । प्रेक्षकाणि इन्द्रियाणि ।(शिवसूत्र ; 3.9–11)[3]

आत्मा नर्तक (अभिनेता) है । जैसे एक व्यक्ति अपने पाठ को पृष्ठभूमि में रखकर स्वयं ही कई चरित्रों की भूमिकाओं को धारण करता है । वैसे ही आत्मा भी अपने स्वरूप का गोपन कर एक संसारी की भूमिका धारण करता है। उसका अन्तः करण ही रंगमंच है और इन्द्रियॉ दर्शक है इस प्रकार आंतरिक जगत में भी एक पूरी नाट्य प्रस्तुति चलती रहती है। इस पृष्ठ भूमि में आचार्य अभिनवगुप्त के साहित्य कला एवं सौन्दर्य चिन्तन को समझा जा सकता है। शैव दर्शन की तत्व मीमांसा में असत् रूप कुछ भी नही है। यहाँ अज्ञान का अर्थ ज्ञान का न होना नही है। बल्कि सीमित ज्ञान है यह अज्ञान भेद बृद्धि उत्पन्न करता है एवं परमेश्वर की अनन्त शक्तियों पर स्वयं परमेश्वर के ही स्वातंत्रय से आवरण डाल देता है। जगत इस दर्शन में सामान्य संसार की तरह है न तो वह असत् है और न ही मिथ्या।

त्रिकदर्शन – शिवोहम्! शिवोहम् !

शैव दर्शन क्या है ? वेदान्त की भांति ही यह एक आस्तिक दर्शन है और वेदान्त की भांति वह ब्रहम या शिव को सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान और सर्वत्र विद्यमान मानता है। शैव उसे शिव परम् चैतन्य या आत्मन् के नाम से सम्बोधित करते है अर्थात् दोनों अद्वैत को मानते है वेदान्ती अपना अंतिम लक्ष्य ब्रहम मय होना मानते है तो शैव उसे शिवमय कहते हैं।

अहं ब्रहमास्मि और शिवोऽहम दोनों की धारणा है।

शिव का रूप परम् चैतन्य है लेकिन वह जब अपना विस्तार करता है तो उसे क्रियाशील होने की आवश्यकता होती है यह वह स्वयं नही करता। अपने ही एक क्रिया रूप को जन्म देता है जिसे शक्ति कहते है। शक्ति शिव का नारी रूप भी है। शिव की क्रियाशीलता के ही कारण सृष्टि का जन्म होता है और शिव का विस्तार होता है क्योंकि शिव ही शक्ति का जन्मदाता है। वहीं जगत को बनाता है। इसलिये वही सब चराचर में स्वयं विद्यमान है।

''शक्ति की सतत् क्रियाशीलता को स्पदंन कहते है। यह सूक्ष्म कम्पन भौतिक जगत का स्वभाव है। परमाणु के भीतर विभिन्न लघु कण सतत क्रियाशील होते है। हर समय एक विशेष प्रकार का नृत्य करते

रहते हैं। इस सूक्ष्म क्रिया के कारण भी एक कम्पन या स्पदंन होता रहता है। वह स्पंदन सृष्टि की विशेषता है।

शिव का विस्तार ही सृष्टि – शिव से शक्ति बनने और संसार या सृष्टि को जन्म देने की शैव दर्शन में विशद व्याख्या की गई है। ब्रह्माण्ड का जन्म परमशिव के विस्तार के अनुभव का आभास है। इस सृष्टि की रचना में शिव के अतिरिक्त किसी और वस्तु या तत्व का कोई योगदान नही होता।

अभिनवगुप्त मानते है कि शिव अपने आप में पूर्ण है और परम आनन्द की अवस्था में है लेकिन आनन्द कोई स्थिर या जड़ अवस्था नही जिसमें कोई गति ही न हो। उसमें विमर्श होता है और यही क्रिया का स्रोत है। जब परमशिव के चैतन्य का अपने आपसे बाहर विस्तार होता है तो ब्रह्माण्ड अस्तित्व में आता है। इसके विपरीत जब वह अपनी चैतन्यता को वापस खींच लेता है तो सृष्टि का अंत होता है। इसी को हम प्रलय कहते हैं।

सृष्टि के इस जन्म के साथ एक प्रकार का द्वैत सा दिखने लगता है। परमशिव की एकता का तत्व और सृष्टि की विविधता का तत्व आमने सामने होते है, लेकिन वास्तव में दोनों एक दूसरे से भिन्न नहीं है। सीमाएँ एक दूसरे में विलीन हो जाती हैं। जब शिव पुरूष के रूप में भाषित होना चाहता है तो स्वाभाविक है कि वह अपने–आप पर कई प्रकार के बन्धन लगाता है। एक से बहु होना है, उसे मुक्त और असीम से सीमित और परवश जीव बनना है, यानी उसे पशु बनना है, जो स्वतंत्र नही है। बंधनों का यह विराट ताना बाना ही माया कहलाता है। उस परमशिव की शुद्ध चेतना पर माया का प्रभाव पड़ता है और वह पाँच प्रकार की सीमाओं में बंध जाताहै अर्थात् उस पर पाँच प्रकार के परदें पड़ते है जो उसे ढ़क लेते है। इन्हें पाँच कंचुकाएँ कहते है। वह चिदाणु बन जाता है। इसी अवसर पर उसे पूर्व सृष्टि से चली आने वाली कर्ममाला भी ढाँप लेती है। इन कंचुकाओं को भेदने के लिए साधक को विभिन्न अपायों से गुजर कर उस स्थिति में पहुँचना होता है जिससे परमशिव के चैतन्य रूप का अनुभव हो। लेकिन इस बिन्दु तक पहुँचने के लिए शक्तिपात की आवश्यकता होती है जो वास्तव में शिवानुगृह से ही होता है शक्तिपात गुरू के माध्यम से ही सम्भव है लेकिन गुरू द्वारा दिय गये शक्तिपात में भी शिवानुगृह ही होता है।

शैव दर्शन का लक्ष्य तो एक ही है लेकिन लक्ष्य तक पहुॅचने के चार परम्परागत मार्ग सुझाए गये है। क्रम परम्परा–जिसे एरकनाथ ने प्रस्तुत किया। कुल परम्परा –जिसे प्रस्तुत करने का श्रेय सुमति नाथ को दिया जाता है। स्पंद जो वसुगुप्त के नाम से जाना जाता है और प्रत्यभिज्ञा– जिसका श्रेय वसुगुप्त के ही एक शिष्यश्सोमानंद को जाता है।

माया का आवरण – माया ब्रह्म या परमशिव की पहचान में बाधक है और उसकी बाधा को पार करना था भेदना परमशिव से मिलन के लिए अनिवार्य है ।

शैव कहते हैं कि माया को नकारने की आवश्यकता नहीं है। माया द्वारा रचे संसार को भोग कर भी परम चैतन्य को पाया सकता है। शैव दर्शन में माया के बंधनो से मुक्ति के जिन उपायों का सुझाव दिय गया है उनमें पहला क्रिया उपाय है। इसमें यौगिक आसन प्राणायाम और हठ योग का अभ्यास आदि शामिल है। शाक्त उपाय प्रमुख रूप से मस्तिष्क को साधने का उपाय हैं। ध्यान और मंत्र का इसमें बहुत महत्व है। इसमें साधक शिव पर अपना सारा ध्यान केन्द्रित करने का अभ्यास करता है। कंचुकाओं के नीचे वास्तविक सत्य तक पहुँचने के लिये इसका महत्व है। शम्भवोपाय साधना का तीसरा और सबसे कठिन लेकिन प्रभावी उपाय है। इसें साधक अपने मन में ही ध्यान केन्द्रित करके अपने भीतर परमशिव को अनुभव करने का प्रयास करता है। इधर उधर भटकते मन को बार बार वापस केन्द्र में लाने और वहॉ स्थापित करने का भी अभ्यास है। साधक इसमें तुर्यावस्था का अनुभव करने लगता है। अनुपाय अंतिम चरण है जहॉ किसी उपाय

की आवश्यकता ही नहीं रहती है। साधक अपने आप विश्राम की स्थिति में आ जाता है। यह मानवेतर अवस्था है जिसमें साधक की तुर्यातीत अवस्था रहती है।

शैवदर्शन तंत्र से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। तंत्र विस्तार को कह सकते है। तंत्र का अर्थ है जिससे विभिन्न तत्वों को एक निश्चित क्रम में विस्तार दिया जाता है तंत्र आगम ग्रन्थों से प्राप्त दैवी शिक्षा है। जिसे परमशिव से प्राप्त किया गया है। तंत्र में आगमों का बडा महत्व है। शैव इन्हें परमशिव से ही अवतरित ज्ञान मानते है।

महामहोपाध्यायं गोपी नाथ कविराज का कहना है

"आर्षज्ञान के मूल में भी आगम ही विद्यमान है। जिसको हम हृदय का स्वतः स्फूर्त प्रकाश समझते है। उसमें भी वस्तुतः स्वतः स्फूर्त नही होता उसके मूल में भी आगम ही होता है ।

तंत्र ज्ञान को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है। यौगिक शाक्त और अन्य। शिव साधना की कई सीढियॉ होती है। दीक्षा यानी ज्ञान पथ पर ले जाने के लिए गुरू की सहमति। गुरू के बिना तंत्र की शिक्षा नहीं होती । कुछ आरम्भिक चरणों के आगे गुरू से शक्तिपात के बिना साधना सम्भव नहीं होती। इसके पश्चात यौगिक साधना भी आवश्यक है । इसमें प्राणायाम योगासन आदि है मुद्रा मंत्र मंडल और यंत्र अन्य सीढियॉ है तंत्र में अपनी काया को समझने का विधान है उससे भागने का नही।तंत्र मंत्र और यंत्र साधना के मुख्य अवयव है। तंत्र अर्थात दर्शन मंत्र अर्थात दैवी शक्तियों का आमंत्रण और यंत्र यानी साधना के उपकरण या साधन। त्रिक शैव–दर्शन अद्वैत तत्र पर आधारित है त्रिक का आशय नर , शक्ति और शिव के संबधो से है। प्रश्न उठता है कि हजार वर्ष बीत जाने के बाद अचानक अभिनवगुप्त का राष्ट्रीय स्तर पर स्मरण करने का उद्देश्य क्या है। महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य होने के अतिरिक्त अभिनवगुप्त और उनके शैव दर्शन की आज और क्या प्रांसगिकता है ?

इतिहास किसी राष्ट्र या देश की स्मृति होती है विस्मृत राष्ट्र की अपने मूल युगों से संचित अपने ज्ञान भण्डार और अपनी निहित प्रतिभाओं की पहचान प्रतिकूल काल की परतों के नीचे दबी होती है। अभिनवगुप्त की ही भाषा में विभिन्न केंचुलियों (कंचुकाओं) के नीचे छिपी होती है। राष्ट्र का अतीत इन परतों में धुंधला और विकृत सा दिखायी देता है। अभिनवगुप्त ऐसे प्रतिभावान दार्शनिक और चिंतक थे। जिन्होंने अनेक दार्शनिक मान्यताओं और साधना पद्धतियों का समन्वय करते हुये एक समग्र दर्शन प्रस्तुत किया, ऐसा दर्शन जिसे समाज को हजारों वर्ष से चली आ रही अतिरंजनाओं से मुक्त होने का मार्ग प्रशस्त किया जिनसे समाज तब प्रभावित था और आज भी किसी न किसी रूप में प्रभावित है प्राचीन काल में वर्ण व्यवस्था को भले ही समाज को सुचारू ढंग से संचालित करने के लिए विकसित किया गया हो लेकिन दिशाहीन अतिवाद के कारण ही इसमें ऊॅच–नीच जैसी धारण भी विकसित हुई। अभिनवगुप्त ने शिव मार्ग पर चलने के लिए ब्राह्मण और शूद्र को समान स्तर पर रखकर आह्वान किया। साधना के लिए ऊॅच–नीच के बीच अंतर समाप्त कर दिया। जब अभिनवगुप्त प्रत्यभिज्ञा पर बले देते हे तो वे जीव के अंतर में विद्यमान शिव की पहचान की बात करते हैं। इसीलिए वे इसे ईश्वर प्रत्यभिज्ञा कहते है लेकिन आज हमारे सामने जन–जन के मन में बसे विराट राष्ट्र की प्रत्यभिज्ञा की बहुत बड़ी चुनौती है। लेकिन अभिनवगुप्त ने संयासी और गृहस्थ के बीच का अंतर ही समाप्त कर दिया, वे स्वयं जीवन भर सन्यासियों की तरह अविवाहित रहे लेकिन अपने भक्तों के लिए घर गृहस्थी से भाग करा साधना करने की बाध्यता नही रखी। अभिनवगुप्त जिन आचार्यो से सहमत नहीं थे उनसे खुल कर अपनी असहमति व्यक्त करते थे, लेकिन वे महान आचार्यो की परम्परा को एकदम नकराने में विश्वास नही करते थे। अपने ग्रंथों में ही उन्होंने ऐसे बीसियों आचार्यो का उल्लेख किया है। महान ग्रंथों को त्याज्य न मान कर अभिनवगुप्त ने उनकी अपनी प्रतिभा के बल पर नई व्याख्याएं की। कालिदास की भांति वे मानते थे कि कोई बात इसलिए सही या गलत नही होती कि वह प्राचीन है

और न कोई बात इसालिए त्याज्य होती है कि वह नई है। प्राचीन शास्त्रों की उनकी परिभाषाएं नई परम्पराएँ बन गई। अभिनवगुप्त के युग में जैसे समस्याएँ और चुनौतियां समाज के सामने थीं। वैसी चुनौतियां बौद्धिक और भौतिक स्तर पर आज भी हमारे सामने है इसलिए आश्चर्य नही कि अभिनवगुप्त का दार्शनिक चिंतन जैसा प्रासंगिक दसवीं शताब्दी के लिए था वैसा ही प्रासंगिक इक्कीसवीं शताब्दी के लिए भी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 अभि0 तन्त्रालोक

2 तन्त्रालोक – 37.58–59

3 शिवसूत्र ; 3.9–11

4 प्रस्तुत आलेख (डा0 जवाहर कौल जम्मू कश्मीर) कश्मीर में शैव दर्शन के पुनरोदय में अभिनव गुप्त का योगदान – विशेष आलेख से सन्दर्भित